E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

वनेचर की उक्ति

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

दुर्योधन की राज्य-व्यवस्था एवं वहाँ के वृत्तान्त को जानकर ब्रह्मचारी वेशधारी वनेचर शिष्टतापूर्वक अभिवादन कर अपना समाचार इस प्रकार कहता है कि राजन्! स्वामी के द्वारा कार्यों में नियुक्त अनुचर को गुप्तचररूपी नेत्रों से देखनेवाले स्वामी को कभी धोखा नहीं देना चाहिए। इसलिए मैं सत्य कहूँगा, यदि मेरी बात कुछ कटु हो तो उसे आप क्षमा कर दीजिए क्योंकि हितकारी प्रिय वाणी दुर्लभ होती है-'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'। जो अपने स्वामी को हितपूर्ण उपदेश नहीं देता, क्या वह सच्चा मित्र है? जो स्वामी अपने हितचिन्तक की बात नहीं सुनता वह क्या सच्चा स्वामी है? वस्तुतः राजाओं तथा सचिवों के परस्पर अनुकूल रहने पर ही समग्र सम्पत्तियाँ सदैव अनुराग करती हैं-

स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते किम्प्रभुः।

सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।।

वनेचर आगे कहता है कि सिंहासीन होते हुए भी वह सुयोधन, वनवासाश्रयी (अतएव विपन्न) आपसे अपनी पराजय की आशङ्का करता हुआ द्यूतक्रीडा के बहाने जीती गई पृथिवी को अब नीति से जीतना चाहता है-

विशङ्कमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।

दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।।

दुर्योधन की राजव्यवस्था के विषय में वनेचर कहता है कि वह काम, क्रोध आदि छह अन्य शत्रुओं को जीतकर नीति के अनुसार प्रजापालन कर रहने रहा है। वह अपने राज्य के अहङ्कार का परित्याग कर नौकरों के साथ भी मित्रों की तरह व्यवहार कर रहा है, अभिन्न मित्रों से भाई के समान

और भाइयों को राज्य का शासन देकर अपने अच्छे आचरण सभी के दिलों को जीतने का प्रयास कर रहा है-

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।

स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।।

उसका निष्कपट सान्त्ववचन बिना दान के, प्रभूत-प्रचुर दान बिना सत्कार के और वैशिष्ट्यपूर्ण सत्कार बिना गुणानुरोध के नहीं होता था-

निरत्ययं साम न दानवर्जितं न भूरिदानं विरहय्य सत्क्रियाम्।

प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया।।

जितेन्द्रिय दुर्योधन न धनसम्पत्ति की आकांक्षावश और न ही क्रोधवश प्रत्युत 'यह मेरा धर्म है' बस यही मानकर पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर, न्यायाधिकरण द्वारा निर्दिष्ट दण्ड से शत्रु अथवा पुत्र के भी सम्बन्ध में धर्म के व्यतिक्रम का निवारण करता है-

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।

गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।।

वह प्रत्येक क्षण सशङ्कित रहकर सर्वत्र अपने विश्वासी रक्षकों को नियुक्त कर निर्भय है, वह साम, दाम, दण्ड, भेदादि उपायों को करता हुआ, भविष्य की उन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील है। उसके यहाँ बड़े-बड़े राजा आकर कर देते हैं, वह जो आदेश देता है, उसका पालन करते हैं, उसके राज्य में कृषि अच्छी है, प्रजा प्रसन्न है और समय-समय पर कर देती है। यही नहीं, अत्यन्त तेजस्वी, अभिमानरूपी धनवाले, लक्ष्मी द्वारा सम्मानित, संग्राम में यशस्वी, परस्पर वैर भुलाकर प्राणों की बाजी लगाकर वीर दुर्योधन का कल्याण चाहते रहते हैं-

महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।

नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्।।

कार्यों को समाप्त कर लेने वाला वह सुयोधन सच्चरित्र गुप्तचरों द्वारा शत्रु नरपतियों की गतिविधि को पूर्णरूप से जान लेता है। किन्तु विधाता की भाँति सुयोधन का भी उद्योग, अतिशय उन्नति वाली शुभपरिणाममयी कार्यसिद्धियों से ही ज्ञात हो पाता है-

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः स वेद निश्शेषमशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।।

सुयोधन ने न तो कहीं प्रत्यञ्चाबद्ध धनुष उठाया न ही मुखमण्डल को क्रोध के कारण विकृत किया। उसके दयादाक्षिण्यादि गुणानुरागवश नृपतिगण उसकी आज्ञा को माला के समान शिरोधार्य करते हैं-

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुच्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्।।

वह दुःशासन को युवराज बनाकर यज्ञ आदि करता रहता है। वह शत्रु राजाओं के नष्ट हो जाने पर भी, भविष्य की चिन्ता न होने पर भी, समुद्रपर्यन्त भूमण्डल का शासन करता हुआ, आपसे आनेवाले भय से चिन्तित रहता है, क्योंकि अपने से अधिक बलवालों के साथ विरोध करना दुःखदायी होता है-

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यतीरहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।।

जब कभी कथा-प्रसङ्ग में वह आपका नाम सुनता है, तब अर्जुन के पराक्रम की स्मृति आ जाती है वह वैसे ही नतमुख हो जाता है जैसे मन्त्रविद्ध सर्प और वह भीतर-ही-भीतर दुःखी हो जाता है-

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः।।

अन्त में वनेचर कहता है- हे महाराज युधिष्ठिर! वह दुर्योधन आपके साथ कपट व्यवहार करना चाहता है, अतः आप शीघ्र उसका प्रतिकार करने के लिए प्रयत्न कीजिए क्योंकि दूसरे के द्वारा कही गयी बात को आप तक पहुँचा देना ही हमारा कार्य है-

परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः।

उपर्युक्त वृत्तान्त वनेचर ने युधिष्ठिर को सुनाया जिसे सुनकर वनेचर को यथोचित पुरस्कार द्रौपदी के भवन में अपने भाइयों के पास चले गये।